दशमाध्यायमें केवलज्ञानकी प्राप्तिके कारणोंपर प्रकाश डालकर मोक्षका स्वरूप तथा मुक्त जीवोंमें जिन क्षेत्र, काल आदि १२ अनुयोगोंसे वैशिष्टय होता है उनका स्पष्टीकरण है।

"तत्त्वार्थसूत्र" जिनागमका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, यह सर्वमान्य बात है। इसमें प्रथमानुयोगको छोड़कर शेष तीन अनुयोगोंका सार संगृहीत है। इसके विधिवत् स्वाध्यायसे जिनागमका अच्छा ज्ञान हो जाता है। पर्युषण पर्वमें इसीका प्रवचन सर्वत्र चलता है और अतिरिक्त समयमें भी सबलोग इसके प्रति अपार श्रद्धा रखते हैं। मेरी रायमें पंडित फूलचन्द्रजी द्वारा रचित इस हिन्दी टीकाको एक बार अवश्य पढ़ना चाहिए। पठन-पाठन के लिए तो यह छात्रोंके लिए बोझिल होगी, पर विद्वानोंको अपना ज्ञान परिपक्व करनेके लिए परमसहायक सिद्ध होगी। टीकामें कुछ विषय ऐसे अवश्य हैं जिनपर विद्वान् चर्चा किया करते हैं, पर उन अल्प विषयोंको गौणकर टीकाका स्वाध्याय करें और प्रवचनकर्त्ता इसे मनोयोग पूर्वक पढ़ें तो उनके ज्ञानमें परिपक्वता नियम से आवेगी।

पंचाध्यायी टीका : एक अध्ययन

पण्डित नाथूलाल शास्त्री, इन्दौर

देशके लब्धप्रतिष्ठ प्रकाण्ड विद्वान् सिद्धान्ताचार्य श्री पण्डित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, वाराणसीकी साहित्य सेवाओंके प्रति जितनी भी कृतज्ञता प्रदर्शित की जावे, थोड़ी है। उनकी अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाओंमें एक पंचाध्यायी हिन्दी टीका भी है।

अजमेर शास्त्र भण्डारसे प्राप्त हस्तलिखित पंचाध्यायीका अध्यापन श्री पण्डित बालदेवदासजीके बाद गुरु गोपालदासजी बरैयाने मुरैना महाविद्यालयमें श्री पण्डित वंशीधरजी न्यायालंकार, श्री पंडित मक्खनलालजी एवं श्री पंडित देवकीनन्दनजी व्याख्यानवाचस्पति आदि उनके प्रमुख शिष्योंको पढ़ाते हुए श्री पं० मक्खन-लालजीसे उसका हिन्दी अनुवाद कराया था। वह अपूर्ण ग्रन्थ शास्त्री परीक्षाके पाठ्यक्रममें हो जानेसे व छात्रोंके पठन-पाठनमें उपयोगमें आने लगा है।

पंचाध्यायी ग्रन्थको ग्रन्थकारने पाँच अध्यायोंमें लिखनेका संकल्प किया था परन्तु उपलब्ध ग्रन्थ केवल डेढ़ अध्यायमें ही है। सम्भव है लिखते हुए ग्रन्थकारका स्वर्गवास हो गया हो।

इस ग्रन्थके रचयिताके सम्बन्धमें श्री पंडित मक्खनलालजीने गम्भीर और महत्त्वपूर्ण रचनाकी दृष्टिसे आचार्य अमृतचन्द्रके नामका उल्लेख किया है। पंडितजीने अपनी आलोचनात्मक ग्रन्थ "आगम मार्ग प्रकाश" में पंचाध्यायीके सम्बन्धमें विस्तारसे विवेचन किया है। श्री पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तारने पंचाध्यायीके कर्ता पंडित राजमलजीको माना है। श्री पंडित फूलचन्द्रजीने भी इन्हींको उक्त ग्रन्थका कर्ता स्वीकार किया है।

हमारी दृष्टिमें भी पंचाध्यायीकी रचना आचार्य अमृतचन्द्रकी नहीं है। पंचाध्यायीके जो शंका समा-धानके रूपमें अनेक श्लोक हैं, उनमें अधिक विस्तार हो गया है जो अमृतचन्द्र सूरीकी शैलीके अनुरूप नहीं। जबकि अमृतचन्द्र सूरीकी भाषामें प्रौढता और सूत्र रूप शब्दावली दृष्टिगोचर होती है। ग्रन्थकर्ता अपना नाम ग्रन्थके अन्तमें दिया करते हैं। जब यह ग्रन्थ पूर्ण ही नहीं हो सका तो ग्रन्थकर्ताको अपना परिचय देनेका अवसर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही कहाँ मिल सका ? पंचाध्यायीमें कतिपय स्थानोंपर "तदाह सूरिः" ऐसे वाक्य आनेसे यह प्रतीत होता है कि किसी प्राचीन आचार्य (अमृतचन्द्र सूरी) की रचनाको पंचाध्यायीकारने हृदयंगम कर अपनी इस कृतिकी रचना की है। स्वयं अमृतचन्द्र अपनेको सूरी बताकर उत्तर देवें यह असंगत मालूम होता है। श्री पंडित मक्खनलाल जी शास्त्रीके पंचाध्यायी हिन्दी अनुवादके पश्चात् सन् १९३२ में श्री पंडित देवकीनन्दन सिद्धान्तशास्त्रीने पंचाध्यायीकी हिन्दी गीता रचकर कारंजा आश्रमसे प्रकाशित कराई थी। उसमें शब्दानुगामी अर्थ और तात्पर्य का पूरा ख्याल रखा गया है। जबकि पूर्व टीकामें भावार्थ और उसके विस्तारको महत्त्व दिया गया है इससे कहीं-कहीं मूलका हार्द छूट सा गया है। तीसरी बार पंचाध्यायीकी टीका श्री पं० देवकीनन्दन और उसका सम्पादन श्री पण्डित फूलचन्द्रजीने किया जो सन् १९५० में "श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला", वाराणसीसे प्रकाशित हुई। इसमें मूलविषयको स्पर्श करते हुए स्वतन्त्र रूपसे विवेचन किया गया है। पंचाध्यायीका संक्षिप्त हिन्दी भाषा अनुवाद और नयकी दृष्टिसे विचार करते हुए श्री सरनारामजीने भी किया है। वर्णी ग्रन्थमालाकी इस पंचाध्यायीमें विषयको खूब स्पष्ट किया गया है। जिसमें श्री पंडित फूलचन्द्रजीका अपने गुरु श्री देवकी-नन्दनजीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए विशेष हाथ है। इसकी प्रस्तावना भी पंडित फूलचन्द्रजीने ५२ पृष्ठोंमें लिखी है उसमें प्रस्तुत ग्रन्थका सार आ गया है।

कविवर राजमलजीके, जिन्होंने पंचाध्यायीके प्रारम्भमें पंचम श्लोकमें अपनेको कवि लिखा है, "लाटी संहिता" ग्रन्थमें इसके सम्यक्त्वके सम्बन्धित ४२६ श्लोक समान रूपमें पाये जाते हैं। प्रस्तावनामें दर्शनका महत्त्व और दर्शनके विभिन्न भेदोंमें अन्तर बतलाते हुए सम्यक्अनेकांत मिथ्या अनेकान्त एवं सम्यक्एकांत—मिथ्या एकान्तका लक्षण लिखा है। द्रव्य और उसके भेद, जीवके स्वभाव आदिके विषयमें लिखते हुए आपने उसकी कमजोरी और उसके दूर करनेका उपायको रत्नत्रय बतलाया है। यहाँ जैन दर्शन का सार-व्यक्ति स्वातन्त्र्य पर अधिक जोर दिया है।

मूल ग्रन्थकारने तत्त्व का लक्षण सन्मात्र मात्र बताते हुए उसे स्वतंत्र सिद्ध, अनादि, अनिधन, स्वसहाय और अखण्ड सिद्ध किया है वह सत् या सत्ता, द्रव्य पर्याय रूप है। द्रव्यार्थिक और पर्यायर्थिक नयका विषय है व नाना पदार्थोंमें स्थित है अतः नाना रूप है, सर्व पदार्थोंमें अन्वय रूपसे पायी जाती है, अतः एक है। विवक्षा भेदसे विश्व रूप—एक रूप, उत्पादादि त्रिलक्षणात्मक—त्रिलक्षणाभाव आदि प्रतिपक्ष रूपता उसमें पाई जाती है। इस विषयमें जगतके प्राणी अपने मनका समाधान जगतका कर्ता ईश्वर मानकर करते हैं, उसका समुचित उत्तर ग्रन्थकारने वस्तुको स्वतः सिद्ध अनादिअनंत सिद्ध करके दिया है। उसे स्व सहाय बताकर उसका स्वतन्त्र परिणमन फल सिद्ध किया है। वस्तु निर्विकल्प याने अखण्ड है इस प्रकार सामान्य या अभेददृष्टिसे निरूपण करनेके पश्चात् विशेष, पर्याय या व्यवहार दृष्टिसे द्रव्यका लक्षण—१. गुणपर्ययवद द्रव्यम् २. गुणसमुदायो द्रव्यं ३. समगुणपर्यायोद्रव्यम् ४. उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तम् सत्—सद्द्रव्यलक्षणं चार प्रकार किया है।

यहाँ द्रव्य, तत्व, सत्व, अन्वय, वस्तु, अर्थ, सामान्य विविध ये पर्यायवाची शब्द होनेसे उक्त द्रव्यका लक्षण बतलाया गया है।

द्रव्यके प्रथम लक्षणमें द्रव्य अनंत गुणों और उनकी पर्यायों का पिण्ड माना है। अन्वयीगुण और व्यतिरेकी पर्यायें हैं। यह गुण पर्याय वाला द्रव्य, गुण और पर्यायोंका समुदाय मात्र है इसलिए गुण समुदाय भी द्रव्य है। पहले दोनों लक्षण परस्पर पूरक हैं। गुण और पर्याय वाला या गुण वाला द्रव्य है, इस कथनसे गुण और पर्याय भिन्न दिखते हैं, इसलिये तीसरा द्रव्यका लक्षण समगुण पर्याय किया गया है। उसमें देश देशांस, गुण गुणांश द्रव्य है। जैसे स्कन्ध, शाखा आदि वृक्ष है, उसी तरह देश देशांश या गुण गुणांश द्रव्य है। इन तीन लक्षणोंके अतिरिक्त चौथे लक्षण उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तम् की आवश्यकता इसलिये है कि नित्यत्वकी गुणके साथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्याप्ति है। अत गुण वाला द्रव्य ध्रौव्यवान सिद्ध होता है। यहाँ गुण लक्ष्य है और ध्रौव्य लक्षण है इसलिए दोनों लक्षण वाला साध्य साधन भाव है। उत्पाद व्यय पर्यायें हैं और द्रव्य पर्याय वाला है। याने द्रव्य उत्पाद व्यय पर्याय वाला है। द्रव्यके ये दोनों लक्षणोंमें से किसी एकके काम चल सकता है इस प्रश्नका समाधान करते हुए ग्रन्थकारने लिखा है कि दोनों लक्षण एक दूसरेके अभिव्यंजक होते हैं इनका अलग-अलग निर्देश किया है। दोनों लक्षण एक दूसरेके पूरक हैं। अन्वय होनेसे गुणोंकी व्याप्ति नित्यताके साथ है और द्रव्य नित्यताका पर्याय-वाची है। क्रमवर्ती और व्यतिरेकी होनेसे पर्यायोंकी व्याप्ति अनित्यताके साथ है और उत्पाद तथा व्यय अनित्य होते हैं। इस प्रकार गुरुपर्याय ये स्वभाववान या लक्ष्य स्थानीय है। और उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये स्वभाव या लक्षण स्थानीय है। किसी अपेक्षासे गुण नित्यानित्यात्मक है क्योंकि सत् अथवा द्रव्य व पर्याय गुणोंसे सर्वथा पृथक् नहीं है। आगे अनेकान्त दृष्टिसे वस्तुके विचारमें कथंचित् अस्ति नास्ति, नित्यानित्य, एक अनेक, तत् अतत् इन चार युगलोंके वस्तु गुंफित हैं, यह सिद्ध किया गया है।

नयका स्वरूप ग्रन्थकारने लिखा है कि उदाहरण, हेतु और फलके साथ विवक्षित वस्तुके गुणोंको उसीका कथन करने वाला समीचीन नय है। इससे विपरीत नयाभास है। इस लक्षणसे जीव वर्णादि वाला, मनुष्य आदि शरीर रूप, गृह कुटुम्ब आदि सुखका कर्ता भोक्ता और ज्ञानज्ञेयका बोध्य बोधक सम्बन्ध। ये चारों नयाभास हैं। जबकि यह अन्यत्र उपचरित, अनुपचरित, असद्भूत व्यवहारनयके अन्तर्गत बताये गये हैं। किन्तु यहाँ ग्रन्थकारने नयका उक्त लक्षण बताकर इनका निषेध ठीक ही किया है। इसे अध्यात्म दृष्टिसे माना जाना चाहिए। इसी प्रकार सद्भूत अनुचरित और उपचरित तथा असद्भूत अनूपचरित और उपचरितके लक्षण और उदाहरण भी उक्त दृष्टिसे यहाँ दिये गये हैं। जो अनगारधर्मामृत और आलापपद्धतिसे भिन्न हैं व्यवहार नयके चारों भेदोंके उदाहरण निम्न प्रकार हैं :—

१. सद्भूत अनुपचरित = ज्ञान जीवका है।

२. सदभूत उपचरित = अर्थ विकल्पात्मक ज्ञान।

३. असदभूत अनुपचरित = अबुद्धिपूर्वक क्रोधादि जीवके हैं।

४. असद्भूत उपचरित = बुद्धिपूर्वक क्रोधादि औदयिक भाव जीवके हैं।

इस ग्रन्थके व्यवहार नय और निश्चय नयको क्रमशः प्रतिषेध्य तथा प्रतिषेधक या भूतार्थ अभूतार्थ होनेका कारण यह बताया है कि वास्तवमें पदार्थ एक और अखंड है, तब द्रव्य क्षेत्र आदिकी अपेक्षा उसमें भेद करते हैं, जो परमार्थ भूत नहीं हैं। व्यवहार नय इनकी अपेक्षा वस्तुको निषेध करता है अतः वह निश्चयनया-पेक्षया प्रतिषेध्य अभूतार्थ और मिथ्या है। वस्तुका द्रव्य गुण और पर्यायरूप विभाग करना वास्तविक नहीं है और उस एक अखण्ड वस्तुको विषय करने वाला निश्चयनय है, जिसका अनुभव करने वाला सम्यक्दृष्टि है। ग्रन्थकारने निश्चयनयमें शुद्ध-अशुद्ध आदि भेद मानने वालोंको मिथ्यादृष्टि और सर्वज्ञकी आज्ञाका उल्लंघन करने वाला माना है क्योंकि आत्म शुद्धिके लिए जो उपयोगी हो वही माना जाना चाहिए।

व्यवहार निश्चय सम्बन्धमें भी आत्म हितके सिवाय वस्तु विचारके समय ज्ञान दोनों नयोंका आश्रय होकर प्रवृत्त होता है। तथा निश्चयमें अनिर्वचनीय है इसलिए तीर्थ स्थापन हेतु वावदूक व्यवहारनय श्रेयस्कर है। इस प्रकार दोनों नयोंकी सापेक्षताको भी नहीं छोड़ा है। स्वानुभूतिके लिए व्यवहारनय जैसे विकल्परूप है वैसे निश्चयनय भी निषेधात्मक विकल्प रूप है अतः स्वानुभूति नयपक्षातीत है। स्वानुभूतिके समय मति श्रुत ज्ञानों (परोक्ष होनेपर भी) से जितना भी ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञानके समान प्रत्यक्ष है। इसके सिवा शेष मति श्रुत ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं। इन्द्रिय विषयोंको ग्रहण करने और आत्मा आदिको जानते समय ये दोनों ज्ञान परोक्ष ही हैं। अवधि और मनःपर्ययज्ञान (प्रत्यक्ष होनेपर भी) का विषय आत्मा नहीं है। आगे दूसरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यायमें जीव और कर्मके अस्तित्वकी सिद्धि करते हुए ग्रन्थकारने अमूर्त जीवका मूर्त कर्मसे सम्बन्ध अनादि बताते हुए वैभाविकी शक्तिका उल्लेख विशेष रूपसे किया है। जैसे जल स्वभावसे ठण्डा होता है पर अग्निका निमित्त पाकर वह गर्म हो जाता है वैसे ही वैभाविकी शक्ति का विशेष निमित्त निरपेक्ष परिणमन सिद्ध अवस्था है, पर कर्मके निमित्तसे उसका संसार अवस्था रूप विभाव परिणमन हो रहा है। इस प्रकार वैभाविक शक्तिके सदैव परिणमन करते रहनेसे एक विभाव परिणमन, जो कर्मके निमित्तसे होता है, दूसरा स्वभाव परिणमन जो विशेष निमित्त निरपेक्ष होता है।

बंधका भी, जो संयोग विशेष है, सुन्दर लक्षण किया है। बंध जीव पुद्गलकी पर गुणाकार अर्थात् परतन्त्र होने रूप क्रिया अर्थात् स्वभाव च्युति या अशुद्धताका नाम है। ग्रन्थ सम्पादकजीने यहाँ परगुणाकार या स्वभाव च्युतिको जीव पुद्गलके बन्धमें परस्पर निमित्त होना बताया है। इसी प्रकार उक्त वैभाविक शक्तिके सम्बन्धमें भी जीवके अपने उपादानकी योग्यतानुसार कार्य होना बताया है। ऐसे बहुतसे स्थल है जहाँ ग्रन्थकारके शब्दोंका स्पष्टीकरण करते हुए संपादकजी अपने पाठकोंको विषयका हार्द समझाते रहे हैं। चेतनाके कर्म फल, कर्म और ज्ञान चेतना ये तीन भेद कहे हैं। इनमें प्रथम एकेन्द्रियमें असंज्ञी पंचेन्द्री तक होते हैं, दूसरी संज्ञी पंचेन्द्री मिथ्यादृष्टिसे बारहवें गुणस्थान तक होती है। तीसरी मुख्यतः केवली और सिद्ध जीवकी होती है। गौण रूपसे ज्ञान चेतना स्वरूपाचरण चारित्रके समान चौथे गुणस्थानसे प्रारंभ होकर तेरहवें गुणस्थान तक क्रमसे बढ़ती जाती है। सम्यक्दर्शनके प्रगट हो जाने पर सम्यक्ज्ञानकी विशेष अवस्थामें आत्मोपलब्धि होती है वह ज्ञान चेतना है। स्वानुभूति चौथे गुणस्थानमें सम्यक्दर्शनके होने पर होती है। पंचाध्यायीके अनुसार दर्शन मोहके उपशमकादि होनेपर सम्यक्दृष्टिको अपने आत्माका जो शुद्ध रूप होता है उसमें चारित्र मोह बाधक नहीं है। यह स्वानुभूति ज्ञान विशेष है। जो सम्यक्दर्शनके साथ रहती है। स्वानुभूतिकी सम्यक्त्वके साथ लब्धि-रूपसे समव्याप्ति होते हुए भी स्वानुभूतिकी उपयोगात्मक दशाके साथ सम्यक्त्वकी विषम व्यापित बनती है। क्योंकि स्वानुभूति उपयोगमें निरंतर नहीं रहती। पंचाध्यायी कार्यकी इस शुद्धात्मानुभूतिको आचार्य ज्ञानसागर जी ने एक आगमिक आत्मोपलब्धि २. मानसिक आत्मोपलब्धि ३. केवल आत्मोपलब्धि इनमेंसे आगमिक आत्मोपलब्धि माना है, जहाँ शुद्धात्माके विषयका श्रद्धान होता है, पर तदनुकूल आचरण नहीं रहता। इस ग्रन्थमें सम्यक्त्वके प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य गुण हैं यथा विस्तृत रूपसे निःशंकित आदि आठ अंग, शंकाके सात भय, तीन मूढ़ता, आचार्य, उपाध्याय व साधुके स्वरूप व उनकी चर्या तथा गृहस्थ धर्मकी विवेचना करते हुए पाँच भावोंमें औदयिक आदिका निरूपण किया है। वात्सल्य अंगके प्रथममें लिखा है कि जिनायतन और चतुः संघमें से किसी पर घोर उपसर्ग आने पर सम्यक्दृष्टि उसे दूर करने हेतु सदा तैयार रहता है यदि आत्मिक सामर्थ्य नहीं है तो अपने पास मंत्र, तलवार और धन है तब तक उन पर उसकी आई बाधाको न देख सकता है और न सुन सकता है। गृहस्थकी यह विरोधी हिंसा अपरिहार्य है, जो आक्रमणका नहीं वरन् रक्षाका उपाय है।

कुछ वेदके कथनमें ग्रन्थकारने मनुष्योंके एक ही भवमें एक भाव वेदके परिवर्तनका उल्लेख किया है। जब कि भाववेद एक भवमें जीवन भर एक रहता है। हाँ द्रव्य भेदमें परिवर्तन हो जाता है।

श्री पंडित मक्खनलालजी या पंचाध्यायीकारको संभवतः धवलाटीकाके स्वाध्यायका अवसर नहीं मिला होगा। क्योंकि पंडितजीने इस ग्रन्थके संपादकका उक्त वेद विषयक मन्तव्यका खंडन किया है। इस प्रकार प्रस्तुत पंचाध्यायी ग्रन्थ एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी अनेक विशेषतायें हैं। द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग प्रधान यह ग्रन्थ है। विद्वान् संपादक महोदयने इसका सुन्दर संपादन कर इसे स्वाध्यायोपयोगी बना दिया है। वर्तमानमें यह तृतीय प्रकाशन भी समाप्त हो चुका है। चतुर्थ प्रकाशन मुद्रित हो रहा है। ●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org